2011:CGHC:9699

प्रकाशन हेतु अनुमोदित

<u>छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर</u>

<u>रिट याचिका क्रमांक 3697/ 1991</u>

याचिकाकर्ता : **सुधाकर**

बनाम

उत्तरवादीगण : **भारतीय स्टेट बैंक व एक अन्य**

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

निर्णय की उद्घोषणा हेतु दिनांक 3 मार्च, 2006 को सूचिबद्ध करें।

सही/-

सतीश के. अग्निहोत्री

न्यायाधीश

2011:CGHC:9699

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

रिट याचिका क्रमांक 3697/ 1991

याचिकाकर्ता : **सुधाकर**

बनाम

उत्तरवादीगण : **भारतीय स्टेट बैंक व एक**

अन्य

संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत याचिका

एकल पीठ: माननीय न्यायमूर्ति श्री सतीश के. अग्निहोत्री

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

याचिकाकर्ता की ओर से : श्री सी.एस. नायर, अधिवक्ता ।

उत्तरवादीगण की ओर से : श्री वी.आर. तिवारी, अधिवक्ता।

आदेश

(दिनांक 25/02/2011 को उद्घोषित)

2011:CGHC:9699

प्रारंभ में, यह याचिका मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर में विविध याचिका क्रमांक 3697/1991 के रूप में प्रस्तुत की गई थी। बाद में, मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के प्रावधानों के तहत मध्य प्रदेश राज्य के पुनर्गठन के पश्चात, इस याचिका को छत्तीसगढ़ राज्य में स्थानांतरित कर दिया गया और इसे रिट याचिका क्रमांक 3697/1991 के रूप में पंजीकृत किया गया।

1. इस याचिका में आदेश (अनुलग्नक-10) दिनांक 26.12.1990 की वैधता और विधिमान्यता को चुनौती दी गई है, जिसके तहत मुख्य महाप्रबंधक एवं नियुक्ति प्राधिकारी ने अनुशासन प्राधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों/सिफ़ारिशों से सहमति व्यक्त करते हुए, भारतीय स्टेट बैंक (पर्यवेक्षी कर्मचारी) सेवा नियम (संक्षेप में 'नियम') के नियम 49(ङ.) और 50(3)(**iii**) के तहत वेतनमान में दो वेतन-चरण नीचे किये जाने का दंड अधिरोपित किया। इसके अनुसार मूल वेतन 3540/- रुपये से घटाकर 3300/- रुपये कर दिया गया। आगे, आदेश (अनुलग्नक-9) दिनांक 15.11.1990 की जांच प्रतिवेदन तथा आदेश (अनुलग्नक-15) दिनांक 09.09.1991 को भी चुनौती दी गई है, और दिनांक 25.07.1988 से 11.12.1988 की अवधि के वेतन का भुगतान जारी करने का निर्देश देने का आग्रह किया गया है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

3. संक्षेप में, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के अनुसार, याचिकाकर्ता अधिकारी, *कनिष्क प्रबंधक* के पद पर कार्य करते हुए, राजनांदगांव से नागपुर के निकट किसी

2011:CGHC:9699

भी स्थान पर स्थानांतरण चाहता था, क्योंकि उसकी पत्नी *स्किज़ोफ्रेनिया* की दीर्घकालिक रोगी थी और उसे नागपुर में नियमित रूप से जांच और दवा की आवश्यकता थी। याचिकाकर्ता के इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया गया। इसलिए, याचिकाकर्ता ने विविध याचिका *क्रमांक 3483/86* के रूप में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर में एक रिट याचिका प्रस्तुत की, जिसमें उसके आचरण पंजी में दर्ज झूठी, निरर्थक और आधारहीन प्रविष्टियों को अभिखण्डित करने तथा उपर्युक्तानुसार उसे स्थानांतरित करने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई। मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 03.08.1988 के द्वारा उसके पदस्थापन के संबंध में दिनांक 03.08.1988 की स्थिति को यथावत बनाए रखने का निर्देश दिया। इस बीच, याचिकाकर्ता का स्थानांतरण बोदला, जो कि एक ग्रामीण शाखा है, में कर दिया गया। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता ने लंबित रिट याचिका में दिनांक 01.08.1988 को *अंतर्वर्ती आवेदन क्रमांक 5427/88* के रूप में संशोधन के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 03.08.1988 को स्वीकृत किया गया। आदेश दिनांक 03.08.1988 के आधार पर, याचिकाकर्ता दिनांक 08.08.1988 को राजनांदगांव स्थित अपने मूल कार्यालय पहुँचा, किंतु उसे पदभार ग्रहण करने नहीं दिया गया और रायपुर स्थित क्षेत्रीय प्रबंधक से संपर्क करने को कहा गया। उसने दिनांक 08.08.1988 को क्षेत्रीय प्रबंधक के समक्ष प्रस्तुत होकर सूचित किया। याचिकाकर्ता

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

2011:CGHC:9699

को वहाँ भी पदभार ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी गई और उसे पांढुर्ना में पदभार ग्रहण करने का निर्देश दिया गया, जहाँ पर उसका स्थानांतरण किया गया था। याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय में एक अन्य आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उत्तरवादियों को निर्देश देने की प्रार्थना की कि वे उसे पांढुर्ना या राजनांदगांव में पदभार ग्रहण करने की अनुमति दे। उच्च न्यायालय के दिनांक 03.08.1988 के आदेश में दिनांक 14.09.1988 (अनुलग्नक-2) को संशोधन किया गया। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"चूँकि यह मामला केवल याचिकाकर्ता के राजनांदगांव से बोदला स्थानांतरण से संबंधित है, इसलिए हमें किसी अन्य निर्देश पर निर्णय देने की आवश्यकता नहीं है। यदि याचिकाकर्ता को लगता है कि बोदला के लिए स्थानांतरण आदेश अब भी प्रभावी है, तो उसे बोदला जाकर पदभार ग्रहण करने की स्वतंत्रता होगी। हालांकि, इस अवधि के दौरान वह या तो नए स्थान पर पदभार ग्रहण कर सकता है या उस स्थानांतरण आदेश को चुनौती दे सकता है।यह न्यायालय वह आदेश पारित नहीं कर सकता जिसकी प्रार्थना की गई है। यदि याचिकाकर्ता उस आदेश को रद्द करवाने में रुचि रखता है, तो वह आवश्यक कदम उठा सकता है। हम आवेदन में की गई प्रार्थना के अनुरूप निर्देश जारी करने के याचिकाकर्ता

2011:CGHC:9699

के अनुरोध को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। अतः आवेदन निरस्त किया जाता है।"

3. इसके बाद संशोधन के लिए एक और आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसे दिनांक 17.11.1988 को निम्नलिखित अभिलेखित टिप्पणियों के साथ अस्वीकार कर दिया गया:

"इस निवेदन को स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि दिनांक 3.8.1988 को यथापूर्व स्थिति बनाए रखने का जो आदेश दिया गया था, वह इसलिए दिया गया प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने पीठ का ध्यान इस तथ्य की ओर नहीं दिलाया कि स्थानांतरण आदेश पहले ही प्रभावी हो चुका था। स्थानांतरण आदेश दिनांक 8.7.88 को पारित हुआ और दिनांक 18.7.88 को याचिकाकर्ता को दिया गया, जिस दिन उसे कार्यमुक्त भी कर दिया गया था। इस स्थिति को हमारे समक्ष विवादित नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में दिनांक 3.8.1988 की स्थिति के अनुसार स्थगन या यथास्थिति बनाए रखने का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, विचाराधीन आवेदन अस्वीकार किया जाता है और दिनांक 3.8.1988 को यथापूर्व स्थिति बनाए रखने हेतु दिया गया स्थगन आदेश भी वापस लिया जाता है।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

2011:CGHC:9699

4. याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.08.1988 को बोदला शाखा में पदभार ग्रहण किया और इसके बाद दिनांक 03.12.1988 से 09.12.1988 तक अवकाश प्रदान करने हेतु पदभार ग्रहण सूचना के साथ एक आवेदन प्रस्तुत किया। इसके उपरांत, दिनांक 15.10.1990 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की गई, यह आरोप लगाकर कि—कार्यमुक्त किए जाने के तथ्य को छिपाकर *यथास्थिति बनाए रखने* का आदेश उच्च न्यायालय से प्राप्त किया गया था। आरोप इस प्रकार थे:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

> "अपने नियंत्रण प्राधिकारी को अपमानित करने के आशय से आपने जानबूझकर यहाँ वर्णित तरीके से कार्य किया। आपने अपने नियंत्रण प्राधिकारी द्वारा जारी आदेशों का जानबूझकर पालन नहीं किया, जिससे गंभीर अवज्ञा प्रदर्शित हुई। इस प्रकार आपने भारतीय स्टेट बैंक (पर्यवेक्षी कर्मचारी) सेवा नियमों के नियम संख्या 32(1) एवं 32(4) का उल्लंघन किया, जो आपकी सेवा को नियंत्रित करते हैं।
>
> बैंक की छवि तथा जनता को हुई असुविधा की परवाह किए बिना आपने जानबूझकर यहाँ वर्णित प्रकार से कार्य किया। उक्त पत्र में बैंक के विरुद्ध निराधार आरोप होने के अतिरिक्त, उसमें विद्रोही, अवज्ञाकारी, अनादर सूचक भाषा और जानबूझकर नियंत्रण प्राधिकारी के प्रति असम्मान एवं

मर्यादा के अभाव का संकेत मिलता है। इस प्रकार आपने बैंक में अपनी सेवाओं को नियंत्रित करने वाले नियम क्र. 32(4) का उल्लंघन किया।

कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति में रहते हुए आपने भारतीय स्टेट बैंक (पर्यवेक्षी कर्मचारी) सेवा नियमों के नियम संख्या 40(1) का उल्लंघन किया।"

5. जांच प्रारंभ की गई। याचिकाकर्ता ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने की अनुमति मांगी, परंतु इसे अस्वीकार कर दिया गया। उसके द्वारा मांगे गए दस्तावेज भी प्रस्तुत नहीं किए गए। जांच अधिकारी ने दिनांक 15.11.1990 को जांच प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और उसके आधार पर दिनांक 26.12.1990 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

6. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित श्री नायर, अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि उत्तरवादी क्रमांक 1 ने स्वतंत्र रूप से तथ्यों पर विचार किए बिना ही जाँच प्रतिवेदन से सहमति व्यक्त कर दी और दंडादेश पारित कर दिया। नियम 50(3)(**ii**) के अनुसार याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने उत्तरवादी क्रमांक 2 को एक प्रतिवेदन दिया, जिसे अपील (अनुलग्नक-11) के रूप में माना गया। जाँच में तथा प्राधिकरणों के समक्ष अधिवक्ता की सहायता की अनुमति भी नहीं दी गई। अंततः, अपील को दिनांक

2011:CGHC:9699

09.09.1991 (अनुलग्नक-15) के आदेश से अस्वीकार कर दिया गया। याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित या कोई अवसर नहीं दिया गया।याचिकाकर्ता को केवल इस कारण दंडित किया गया कि उसने अपने चरित्र पंजी में की गई प्रतिकूल प्रविष्टियों को हटवाने हेतु उच्च न्यायालय का रुख किया था। जाँच प्रक्रिया इसलिए भी दूषित थी क्योंकि याचिकाकर्ता को दंडित करने का निर्णय पहले से ही ले लिया गया था। यहाँ तक कि श्री पी.आर. अग्रवाल द्वारा याचिकाकर्ता को धमकाए जाने की बात को भी संज्ञान में नहीं लिया गया। विभागीय जाँच में अधिवक्ता की सहायता के इंकार से भी पूरी जाँच प्रक्रिया अवैध हो जाती है। अभियोग-पत्र का परीक्षण भी जाँच अधिकारी द्वारा ठीक से नहीं किया गया। अवज्ञा का आरोप भी निराधार है, क्योंकि विधि का आश्रय लेना याचिकाकर्ता का वैधानिक अधिकार है और किसी भी आदेश के पारित होने से पहले उत्तरवादियों को विधिवत नोटिस दिया गया था। झूठा कथन देने और स्थगन आदेश प्राप्त करने का आरोप भी विभागीय जाँच का विषय नहीं हो सकता, क्योंकि यह कथित रूप से उच्च न्यायालय के समक्ष हुआ था, और यदि कोई गलत कथन किया गया हो तो कार्यवाही करने का अधिकार केवल उच्च न्यायालय को था। चाबी न सौंपने का आरोप भी निरर्थक है, क्योंकि चाबी सौंपने के बाद पावती लेने का कोई प्रचलन नहीं है। याचिकाकर्ता ने अपने उत्तर में भी बताया है कि चाबियाँ सौंप दी गई थीं। और इसके अतिरिक्त, उत्तरवादियों के पास

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

डुप्लीकेट चाबियाँ भी उपलब्ध थीं, अतः कथित रूप से क्लियरिंग बॉक्स खोलने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती थी। अशोभनीय और अनादर सूचक भाषा के आरोपों को चाबी न सौंपने के आरोप के साथ जोड़ना भी अनुचित है। यह स्पष्ट रूप से बैंक अधिकारियों की प्रतिशोधपूर्ण मानसिकता को दर्शाता है।

7. इसके विपरीत, विद्वान अधिवक्ता श्री वी.आर. तिवारी, जो उत्तरवादी–बैंक की ओर से श्री बी.डी. गुरु, अधिवक्ता की ओर से उपस्थित हुए, ने तर्क प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए सभी आरोप पूर्णतः सिद्ध हुए थे और विभागीय प्राधिकारी ने संपूर्ण प्रतिवेदन का अवलोकन कर तथा निष्कर्षों से सहमत होते हुए विधि के अनुसार आदेश पारित किया। उसी आदेश को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी यथावत रखा गया। जांच अधिकारी ने आरोप सिद्ध होने के निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कारण दर्ज किए हैं। जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा अपने बचाव हेतु अधिवक्ता की अनुमति के अनुरोध को अस्वीकार करने का प्रश्न है, उत्तरवादी का तर्क है कि विभागीय कार्यवाही में यदि प्रबंधन स्वयं अधिवक्ता की सहायता नहीं ले रहा हो, तो अपचारी कर्मचारी को भी अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं होता। इस संदर्भ में श्री तिवारी ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **क्रेसेंट डाइज़ एंड केमिकल्स लिमिटेड बनाम राम नरेश त्रिपाठी**[1] **और नेशनल सीड्स कॉर्प लिमिटेड बनाम के.वी. रामा रेड्डी**[2] का अवलंब लिया। श्री तिवारी ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

1 (1993) 2 SCC 115
2 (2006) 11 SCC 645

याचिकाकर्ता यह नहीं दर्शा पाया कि कोई निष्कर्ष इस आधार पर निकाला गया कि उसे आवश्यक दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए। अतः न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र सीमित है। उनके समर्थन में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय

टी.एन राज्य वी. थिरु के.वी. पेरुमल और अन्य[3] तथा यूपी राज्य एवं अन्य बनाम रमेश चंद्र मांगलिक[4] का भी अवलंब लिया।

8. उत्तरवादी पक्षकारों के अधिवक्ताओं की परस्पर विरोधी तर्कों को सुनने तथा याचिका एवं उसके साथ संलग्न अभिलेखों का अवलोकन करने पर यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अधिरोपित सभी आरोप सिद्ध पाए गए हैं। हालाँकि, प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आरोप क्रमांक 1 के संदर्भ में , क्या यह कहा जा सकता है कि यदि याचिकाकर्ता ने अंतरिम आदेश प्राप्त कर लिया था, जिसे बाद में सही तथ्य प्रस्तुत करने पर उच्च न्यायालय ने निरस्त कर दिया, तो क्या यह अवज्ञा माना जा सकता है? और आगे यह भी कि क्या इस प्रकार का आरोप कर्मचारी के विरुद्ध तब तक विरचित किया जा सकता है जब तक कि न्यायालय से इसकी अनुमति प्राप्त न कर ली जाए? उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 17.11.1988 में यह तथ्य पहले ही विचार कर लिया है कि याचिकाकर्ता द्वारा सही तथ्य पीठ के समक्ष प्रस्तुत नहीं किए गए थे, और उसी आधार पर दिनांक 17.11.1988 का आदेश (अनुलग्नक-3) पारित किया था, जो इस प्रकार है:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

3 (1996) 5 SCC 474
4 (2002) 3 SCC 443

2011:CGHC:9699

"17.11.88

श्री बी.बी. शेण्डे याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित।

श्री श्रौति एवं श्री अतुल अवस्थी उत्तरवादी की ओर से उपस्थित।

इनकी *अंतर्वती आवेदन क्रमांक 8172/88*, जो दिनांक 3.8.1988 को पारित स्थगन आदेश में संशोधन हेतु दायर की गई है, पर सुनवाई की गई। यह उल्लेखनीय है कि दिनांक 3.8.1988 का आदेश दिनांक 14.9.88 के आदेश द्वारा पहले ही संशोधित किया जा चुका है, फिर भी याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे संशोधन हेतु यह आवेदन प्रस्तुत किया है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यदि याचिकाकर्ता को राजनांदगांव से बोदला स्थानांतरण आदेश का पालन करने के लिए बाध्य किया गया, तो उससे उसे अत्यधिक कठिनाई होगी। दिनांक 3.8.1988 के आदेश द्वारा इस न्यायालय ने यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया था।"

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि इस आदेश को स्पष्ट करते हुए यह कहा जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता अपनी मूल पदस्थापना पर ही पदस्थ रहेगा। इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि दिनांक

2011:CGHC:9699

3.8.1988 को पारित यथास्थिति बनाए रखने का आदेश संभवतः इस कारण पारित किया गया था कि याचिकाकर्ता ने पीठ के समक्ष यह तथ्य नहीं रखा था कि स्थानांतरण आदेश पहले ही प्रभाव में आ चुका है। स्थानांतरण आदेश दिनांक 8.7.88 को पारित हुआ था और दिनांक 18.7.88 को याचिकाकर्ता को इसकी सूचना दी गई थी, जिस दिन उसे कार्यमुक्त भी कर दिया गया था। यह तथ्य हमारे समक्ष विवादित नहीं है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

ऐसी परिस्थितियों में दिनांक 3.8.1988 की स्थिति के अनुरूप स्थगन देने या यथास्थिति बनाए रखने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था।"

उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत, विचाराधीन आवेदन अस्वीकृत किया जाता है और दिनांक 3.8.1988 को पारित यथा स्थिति यथावत बनाए रखने संबंधी स्थगन आदेश भी वापस लिया जाता है।

हस्ता/-
फ़ैज़ामुद्दीन,
न्यायाधीश

हस्ता/-
के.के. अधकारी,
न्यायाधीश

2011:CGHC:9699

इस प्रकार, यथास्थिति बनाए रखने के लिए दिनांक 03.08.1988 का अंतरिम आदेश वापस ले लिया गया। उत्तरवादी अधिकारियों द्वारा न तो कोई स्वतंत्रता माँगी गई थी और न ही न्यायालय द्वारा दी गई थी कि वे याचिकाकर्ता के विरुद्ध इस आधार पर कोई कार्यवाही शुरू करें कि उसने मामले की सुनवाई कर रही माननीय पीठ के संज्ञान में सही तथ्य नहीं लाए। इस प्रकार, आरोप क्रमांक 1 के समर्थन में अधिरोपित आरोप और अभियोग-पत्र विधि की दृष्टि में दूषित हैं। आरोप क्रमांक 1 इस प्रकार है:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

> "क्षेत्रीय कार्यालय के पत्र क्रमांक **क्षेत्र कार्य (स्टाफ) 1309 ए**, दिनांक **8 जुलाई 1988** के संदर्भ में, शाखा प्रबंधक राजनांदगांव ने आपको दिनांक **18.7.88** को बोदला शाखा के लिए कार्यमुक्त किया था। आप बोडला शाखा में पदभार ग्रहण करने के लिए उपस्थित नहीं हुए। आपने अपनी रिट याचिका क्रमांक 3483/1987 में संशोधन के लिए जबलपुर उच्च न्यायालय में एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें आपने दिनांक दिनांक 18.7.88 के स्थानांतरण आदेश को अभिखण्डित करने की मांग की। इसका आधार यह था कि दिनांक 18.7.88 का आदेश अवैध है, यह बदले की भावना से दुर्भावनापूर्ण है, और केवल याचिकाकर्ता को परेशान करने के लिए दंड के तौर पर जारी किया

2011:CGHC:9699

गया था क्योंकि उसने माननीय उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का उपयोग किया था। आपने जानबूझकर बैंक के विरुद्ध शपथ पर झूठा साक्ष्य देकर दिनांक 3.8.88 को स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया। बाद में, जब बैंक ने स्थिति स्पष्ट की, तो उच्च न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश वापस ले लिया गया। न्यायालय ने अपने दिनांक 24.11.88 के निर्णय में उल्लेख किया कि याचिकाकर्ता ने पीठ के संज्ञान में यह बात नहीं लाई कि स्थानांतरण आदेश दिनांक 8.7.88 को पारित किया गया था और दिनांक 18.7.88 को याचिकाकर्ता को सौंपा गया था। इस प्रकार, आपने उस न्यायालय से महत्वपूर्ण तथ्य छिपाया जिसके समक्ष बैंक को उत्तरवादी के रूप में पक्षकार बनाया गया था।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

9. नियमों के नियम 32(1) और (4) में यह प्रावधान नहीं है कि न्यायिक न्यायालय में जाना और न्यायालय के समक्ष कोई गलत कथन देना दुराचार या अवज्ञा माना जाएगा। नियमों के नियम 32(1) और (4), इस प्रकार हैं:

"32. (1) प्रत्येक कर्मचारी इन नियमों का पालन करेगा और उनका अनुपालन करेगा, तथा समय-समय पर उसे जिसके अधीन, पर्यवेक्षण या नियंत्रण में रखा गया हो, उस व्यक्ति द्वारा दिए गए

2011:CGHC:9699

सभी वैध और उचित आदेशों एवं निर्देशों का पालन करेगा और उन्हें मानेगा."

XXX XXX XXX

"(4) प्रत्येक कर्मचारी हर समय बैंक के हितों की रक्षा और उन्हें सुरक्षित रखने के लिए यथासंभव सभी कदम उठाएगा तथा अपना कर्तव्य अत्यंत सत्यनिष्ठा, तत्परता, समर्पण और परिश्रम के साथ निभाएगा, और ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा जो बैंक अधिकारी के पद के अनुरूप न हो।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

XXX XXX XXX

XXX XXX XXX

10. 'अवज्ञा' शब्द की परिभाषा, *एडवांस्ड लॉ लेक्सिकॉन, पी. रामनाथ अय्यर, तृतीय संस्करण, 2005* में, निम्नलिखित रूप में दी गई है:

"अवज्ञा- 'अवज्ञा' शब्द का अर्थ है अधिकार के अधीन होने से इनकार करना; आदेशों का उल्लंघन, नियमों का भंग करना, या सामान्य रूप से अधिकार के प्रति असंतोषजनक/विद्रोही रवैया रखना। (वेबस्टर का थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी)

'**अवज्ञा**' का अर्थ है अधिकार के प्रति स्वयं को अधीन करने से इंकार करना, और यह आवश्यक नहीं कि मात्र किसी आदेश का पालन न करना ही 'अवज्ञा' कहलाए। आर वी. ग्रांट, (1957) 2 ऑल ईआर 694, 696 (कोर्ट मार्शल अपील कोर्ट)। [आर्मी अधिनियम, (1955), धारा 7]

एक शासकीय पदाधिकारी, जो अपने वरिष्ठ अधिकारियों पर आरोप अधिरोपित करने में बिल्कुल संकोच नहीं करता और यहाँ तक कि राज्य के प्रमुख को भी नहीं बख्शता, उसकी ऐसी रूप-रेखा और आचरण किसी भी प्रशासन द्वारा सहन करने योग्य नहीं है।(आर.एल. गुप्ता बनाम राज्य, एआईआर1954 एचपी 1)।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अवज्ञा होने की गुणवत्ता या अवस्था; अधिकार का विरोध, उच्च पदाधिकारी की अवहेलना। [धारा 138, भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम 45)]"

11. इस प्रकार, याचिकाकर्ता के आचरण को, जैसा कि आरोप क्र. 1 में कहा गया है, "अवज्ञा" की परिभाषा के अंतर्गत लाने के लिए नियमों के नियम 32(1) और (4) का आह्वान करना उचित नहीं है।

12. सर्वोच्च न्यायालय ने **प्रताप सिंह और एक अन्य बनाम गुरबख्श सिंह**[5] मामले में निम्नलिखित अवधारित किया:

5 (V 49 C 167)

"यह कहा गया है कि शासकीय सेवक के आचरण में शिष्टाचार और अनुशासन पर बल दिया गया है; और यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि इस दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यह परिपत्र न्यायालयों में न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता। सैद्धांतिक रूप से और अमूर्त रूप में यह सही हो सकता है; और यदि परिपत्र केवल यह कहता हो कि सामान्यतः किसी शासकीय सेवक को न्यायालय जाने से पहले अपने विभागीय उपचार को समाप्त कर देना चाहिए, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। सामान्य रूप से, कोई शासकीय सेवक तब तक न्यायालय नहीं जाता जब तक कि उसे विभागीय अधिकारियों से वह न्याय नहीं मिलता जिसे वह उचित समझता है। किन्तु इस मामले में हमें एक कुछ भिन्न समस्या पर विचार करना है—अर्थात लंबित मुकदमे के दौरान उत्तरवादी के विरुद्ध की गई कार्यवाही, जैसे कि विभागीय उपचारों को पूरा किए बिना न्यायालय जाने पर हर मामले में दंड दिया जाना अनिवार्य हो।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"13. अतः, याचिकाकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय का रुख करने की कार्यवाही अवज्ञा की परिधि में नहीं आती, और इसलिए आरोप क्रमांक 1 निराधार, अवैध है तथा इसी आधार पर निरस्त किया जाता है।

2011:CGHC:9699

14. जहाँ तक आरोप क्रमांक 2 का प्रश्न है, वह इस सीमा तक पूर्णतः सिद्ध पाया गया है कि सी.एस.ओ. ने बैंक अधिकारी के पद के प्रतिकूल आचरण किया तथा नियम 32(4) का उल्लंघन किया। आरोप क्रमांक 3, अर्थात दिनांक 25.7.1988 से 10.12.1988 तक कर्तव्य से अनुपस्थित रहने का आरोप भी सिद्ध पाया गया है। याचिकाकर्ता यह स्थापित करने में असमर्थ है कि विभागीय जांच में उसे किसी प्रकार की हानि पहुँची, क्योंकि न तो उसे सुनवाई का अवसर देने से वंचित किया गया था और न ही उसके द्वारा माँगे गए संबंधित दस्तावेज उपलब्ध कराने से मना किया गया था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

15. याचिकाकर्ता के इस कथन के संबंध में कि उसे सभी दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए, तमीलनाडु राज्य[3] *के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया है:"*

> *"4....अब केवल तीसरा आधार शेष रहता है, अर्थात् उत्तरवादी द्वारा मांगे गए दस्तावेज उपलब्ध न कराना। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकरण यह समझ रहा था कि जांच अधिकारी/अनुशासनात्मक प्राधिकारी पर यह बाध्यता है कि वह अपचारी अधिकारी/कर्मचारी द्वारा मांगे गए हर एक दस्तावेज की प्रति उपलब्ध कराए। यह धारणा गलत है। उनका कर्तव्य*

2011:CGHC:9699

केवल सुसंगत दस्तावेज उपलब्ध कराना है, न कि अपचारी अधिकारी/कर्मचारी द्वारा मांगे गए प्रत्येक दस्तावेज को देना..."

"16. उपर्युक्त तमीलनाडु राज्य[3] प्रकरण में प्रतिपादित सिद्धांत का उल्लेख सर्वोच्च न्यायालय ने रमेश चंद्र मांगलिक[4] के मामले में अनुमोदन के साथ किया है, और निम्नलिखित विचार व्यक्त किया है:"

"11. अपीलार्थी के अधिवक्ता ने आगे तर्क प्रस्तुत किया है कि जिन विशिष्ट दस्तावेजों की प्रतियाँ उपलब्ध न कराए जाने का दावा किया गया है, उन्हें उत्तरवादी द्वारा स्पष्ट रूप से नहीं दर्शाया गया है, न ही उच्च न्यायालय के आदेश में उनका उल्लेख है, और न ही उनकी सुसंगतता बताई गई है। यह तर्क दिया गया है कि अपचारी कर्मचारी को यह भी दर्शाना होगा कि कोई विशेष दस्तावेज जांच से किस प्रकार संबंधित था और उस दस्तावेज की प्रति न दिए जाने से उसे किस प्रकार की हानि हुई। इस तर्क के समर्थन में चंद्रमा तिवारी बनाम भारत संघ में प्रकाशित मामले का अवलंब लिया गया है। इस मामले में यह अवलोकन किया गया कि दस्तावेजों की प्रतियाँ उपलब्ध कराने का दायित्व केवल उन्हीं तात्विक और सुसंगत दस्तावेजों तक सीमित है जिन पर आरोपों के समर्थन में अवलंब लिया गया हो। आगे यह भी कहा गया कि यदि कोई दस्तावेज अभियोग पत्र में उल्लिखित हो,

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

2011:CGHC:9699

परंतु उसका आरोपों से कोई संबंध न हो, अथवा उस पर भरोसा न किया गया हो, या वह किसी साक्षी के प्रतिपरीक्षण के लिए आवश्यक न हो, तो ऐसे दस्तावेज की प्रति न देने से अपचारी कर्मचारी को कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पडता। ऐसी परिस्थितियों में जांच दुषित नहीं होती। टी.एन. राज्य बनाम थिरु के.वी. पेरुमल जिस पर अपीलार्थी ने अवलंब लिया है में यह कहा गया है कि जिस दस्तावेज की प्रति उपलब्ध कराने पर अपचारी कर्मचारी बल देता है, उसकी सुसंगतता दिखाना उसी का दायित्व है। दस्तावेज की प्रति न दिए जाने से किस प्रकार की हानि हुई, यह भी देखा जाना आवश्यक है। अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा संदर्भित एक अन्य मामले *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरेंद्र अरोड़ा के मामले* में यह अभिनिर्धारित किया गया दस्तावेज की प्रति उपलब्ध नहीं कराई गई, तब अपचारी कर्मचारी को यह दर्शाना आवश्यक है कि इसकी वजह से उसे किस प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव पडा"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उपरोक्त के आलोक में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

2011:CGHC:9699

'12....हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि उत्तरवादी को दस्तावेज उपलब्ध न कराए जाने के कारण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है संधारणीय नहीं है।'"

17. विधि के सुस्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता का यह कथन कि उसे दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए—बिना यह बताए कि कौन-सा विशिष्ट दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराया गया और बिना यह दर्शाए कि उन अप्राप्त दस्तावेजों के आधार पर कोई निष्कर्ष दर्ज किया गया—अस्वीकार किया जाता है। आगे, वह यह भी प्रदर्शित करने में असफल रहा है कि किसी दस्तावेज की प्रति न दिए जाने से उसे किसी प्रकार की हानि पहुँची।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

18. अगला प्रश्न यह है कि याचिकाकर्ता को अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नहीं दी गई, जिसे अस्वीकार किया जाता है क्योंकि इस संबंध में विधि सुव्यवस्थित और स्पष्ट है। सर्वोच्च न्यायालय ने *क्रिसेंट डाइज़ एंड केमिकल्स लिमिटेड* के मामले में अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान अधिवक्ता की नियुक्ति के संदर्भ में, निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया है:

"11. किसी अधिकरण के समक्ष उपस्थित एक अपचारी व्यक्ति यह महसूस कर सकता है कि प्राकृतिक न्याय के नियमों पर आधारित निष्पक्ष सुनवाई के व्यापक अधिकार में प्रतिनिधित्व का अधिकार निहित है।

2011:CGHC:9699

अतः, वह यह समझ सकता है कि अपने विकल्प के प्रतिनिधि के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने की अनुमति न देना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के बराबर है। सामान्यतः यह वांछनीय माना जाता है कि अधिवक्ता या अपने विकल्प के प्रतिनिधि द्वारा प्रतिनिधित्व के इस अधिकार को प्रतिबंधित न किया जाए, लेकिन यह कहना बिल्कुल अलग बात है कि ऐसा अधिकार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का एक अनिवार्य तत्व है और इसके न दिए जाने से अनुशासनात्मक जांच स्वतः अमान्य हो जाएगी।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

19. क्रिसेंट डाइज़ एंड केमिकल्स लिमिटेड[1] के निर्णय का अनुमोदन करते हुए राष्ट्रीय बीज निगम लिमिटेड के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:

"9. यद्यपि यह सही है, जैसा कि उत्तरवादी के अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया, कि यदि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी कोई विधि व्यवसायी नहीं है, तब भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी के मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किसी विधि व्यवसायी की नियुक्ति की अनुमति दे सकता है। लेकिन यह पूरी तरह से तथ्यात्मक परिस्थिति पर निर्भर करेगा।"

20. याचिकाकर्ता का यह तर्क कि उसे सूचना प्राप्त करने का अधिकार है, भले ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों के साथ सहमति

2011:CGHC:9699

जताई हो, नियम 50(3)(**ii**) के प्रावधानों के अनुसार, और इस प्रकार जांच प्रतिवेदन को स्वीकार करने से पहले सुनवाई का अवसर न मिलने के कारण दंड अमान्य है।

21. सर्वोच्च न्यायालय ने ***पंजाब नेशनल बैंक और अन्य बनाम कुंज बिहारी मिश्रा*** *के मामले* में निम्नलिखित *अनुसार* अभिनिर्धारित किया है:

"19. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह होगा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को विनियमन 7(2) में अंतर्हित माना पढ़ा जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप, जब भी अनुशासनात्मक पदाधिकारी किसी आरोप पर जांच अधिकारी से असहमत होता है, तो अपने निष्कर्ष दर्ज करने से पहले उसे अपनी असहमति के कारणों को दर्ज करना होगा और अपचारी अधिकारी को अपनी राय प्रस्तुत करने का अवसर देना होगा। जांच अधिकारी का प्रतिवेदन जिसमें उसके निष्कर्ष शामिल होंगे, उसे संप्रेषित किया जाना चाहिए और अपचारी अधिकारी को यह अवसर दिया जाना चाहिए कि वह अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह विश्वास दिला सके कि जांच अधिकारी के अनुकूल निष्कर्ष को स्वीकार किया जाए। जैसा कि हमने पहले ही अवधारित किया है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत इस बात की मांग करते हैं कि जिस पदाधिकारी को अंतिम निर्णय लेना है और शास्ति अधिरोपित

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

2011:CGHC:9699

किया जा सकता है, उसे आरोपित अधिकारी को यह अवसर देना आवश्यक है कि वह अनुशासनात्मक पदाधिकारी के सामने आरोपों पर अपने तर्क प्रस्तुत कर सके, इससे पहले कि पदाधिकारी अपने निष्कर्ष दर्ज करे।"

*22. स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और अन्य बनाम के.पी. नारायणन कुट्टी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने, पंजाब नेशनल बैंक के निर्णय के कंडिका 19 का संदर्भ लेते हुए और नियम 50(3)(**ii**) के प्रावधानों पर विचार करते हुए, निम्नलिखित अनुसार अभिनिर्धारित किया:*

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

*"6...उपरोक्त पंजाब नेशनल बैंक के मामले के कंडिका 19 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को विनियमन 7(2) में अंतर्हित जाना चाहिए [राज्य बैंक ऑफ इंडिया (पर्यवेक्षी कर्मचारी) सेवा नियमों के नियम 50(3)(**ii**) के प्रावधान वर्तमान मामले में लागू हैं] और अपचारी अधिकारी को यह अवसर दिया जाना चाहिए कि वह अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जांच अधिकारी के अनुकूल निष्कर्ष को स्वीकार करने के लिए प्रेरित कर सके। ऐसे में हम अपीलार्थियों की उस तर्क को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करते हैं कि जब तक यह नहीं दर्शाया जाता कि उत्तरवादी को किसी प्रकार की हानि हुई, उच्च न्यायालय द्वारा बर्खास्तगी के आदेश को अपास्त नहीं किया जा सकता।"*

2011:CGHC:9699

23. नियम 50(3)(**ii**) के प्रावधान निम्नलिखित हैं:

> '50(3)(**ii**) यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी किसी आरोप पर जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों से असहमत है, तो उसे अपनी असहमति के कारणों को दर्ज करना होगा और यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर्याप्त हों, तो उस आरोप पर अपने स्वयं के निष्कर्ष दर्ज करने होंगे।'"

24. याचिकाकर्ता का यह दावा नहीं है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने किसी ऐसे निष्कर्ष से असहमती जताई है जो याचिकाकर्ता के पक्ष में दर्ज किया गया हो। सर्वोच्च न्यायालय ने के.पी. नारायणन कुट्टी के मामले में स्पष्ट किया है कि यदि जांच अधिकारी द्वारा अनुकूल निष्कर्ष दर्ज किया गया है, तो अपचारी अधिकारी को सुनवाई का अवसर दिया जाएगा। वर्तमान मामले में, जांच अधिकारी द्वारा कोई अनुकूल निष्कर्ष नहीं दिया गया है और न ही याचिकाकर्ता द्वारा इसका कोई उल्लेख किया गया है। अतः, जांच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार करते समय, जो याचिकाकर्ता के विरुद्ध हैं, सुनवाई का अवसर आवश्यक नहीं है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

25. उपर्युक्त कारणों के आधार पर, आरोप क्रमांक 1 अभिखण्डित किया जाता है। यह मामला पुनः अपीलीय प्राधिकारी को लौटाया जाता है ताकि दंड अधिरोपित करने के मामले में आरोप क्रमांक 1 को अभिखण्डित किए जाने के तथ्य के आधार पर मामले में दण्ड अधिरोपित करने पर पुनः विचार किया जा सके। यद्यपि अन्य

आरोप क्रमांक 2 और 3 के निष्कर्षों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया है। अपीलीय प्राधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि आवश्यक कार्यवाही यथाशीघ्र, प्राथमिकता के आधार पर तीन माह के भीतर पूर्ण करे, क्योंकि इसमें शामिल विवाद 1990 का है।

26. उपर्युक्त विचार और निर्देशों के साथ, इस रिट याचिका को उपरोक्त सीमा तक स्वीकार किया जाता है।

27. वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया गया है।

सही/-

सतीश के. अग्निहोत्री

न्यायाधीश

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By .....Aniruddha Shrivastava, Advocate